National Journal of
Hindi & Sanskrit Research

ISSN: 2454-9177
NJHSR 2026; 1(65): 113-116
© 2026 NJHSR
www.sanskritarticle.com

Shubham Kumar Pandey
Research scholar,
Department of Veda,
SVDV fucalty BHU Varanasi

Correspondence:
Shubham Kumar Pandey
Research scholar,
Department of Veda,
SVDV fucalty BHU Varanasi

राष्ट्रभृत् होम: एक अध्ययन।

शुभमकुमारपाण्डेय

शोधसार :

प्रस्तुत शोध आलेख वैदिक वाङ्मय में 'राष्ट्रभृत्' की बहुआयामी संकल्पना का अन्वेषण करता है। यह अध्ययन विशेष रूप से गृहस्थ धर्म के एक महत्त्वपूर्ण संस्कार, विवाह, के संदर्भ में 'राष्ट्रभृत्' के अर्थ, प्रयोजन, अधिकारी और काल पर केंद्रित है। इसमें शतपथ ब्राह्मण, कात्यायन श्रौतसूत्र और पारस्करगृह्यसूत्र (हरिहर भाष्य सहित) जैसे प्राथमिक स्रोतों का विश्लेषण किया गया है। शुक्लयजुर्वेद के भाष्यकारों की दार्शनिक अंतर्दृष्टि का भी तुलनात्मक विश्लेषण किया गया है, जो 'राष्ट्रभृत्' को विविध रूप में प्रस्तुत करते हैं। आलेख **'गन्धर्वाप्सर'** की अवधारणा, राष्ट्रभृत् होम के प्रतीकात्मक महत्व और राष्ट्र के पोषण में गृहस्थ के योगदान को भी स्पष्ट करता है। निष्कर्षतः, यह दर्शाता है कि कैसे वैदिक परंपरा में व्यक्तिगत संस्कार भी राष्ट्र के समग्र कल्याण और आध्यात्मिक उन्नति से अविच्छिन्न रूप से जुड़े थे।

वैदिक परंपरा में धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष के पुरुषार्थ चतुष्टय की सिद्धि का मार्ग प्रशस्त किया गया है। इन पुरुषार्थों की आधारशिला गृहस्थ आश्रम है, जिसका प्रवेश द्वार विवाह संस्कार है। वैदिक वाङ्मय में, प्रत्येक व्यक्तिगत संस्कार और अनुष्ठान को बृहत्तर सामाजिक, राष्ट्रीय और ब्रह्मांडीय व्यवस्था के साथ जोड़ने की एक गहन दृष्टि परिलक्षित होती है। इसी दृष्टि का एक महत्त्वपूर्ण उदाहरण **'राष्ट्रभृत् होम'** की संकल्पना है। 'राष्ट्रभृत्' शब्द सामान्यतः राष्ट्र के पोषण, धारण और वृद्धि से जुड़ा है, और यह केवल राजसी यज्ञों तक सीमित न रहकर गृहस्थ जीवन के संस्कारों में भी अपनी प्रतीकात्मक उपस्थिति दर्शाता है।

'राष्ट्रभृत्' की व्युत्पत्ति और शाब्दिक अर्थ - 'राष्ट्रभृत्' शब्द की संस्कृत व्याकरणिक व्युत्पत्ति **'राष्ट्र' + 'भृत्' 'राष्ट्रं विभर्ती धारयतीति राष्ट्रभृत्' (धारण करना/पोषण करना)।** अर्थात इसका शाब्दिक अर्थ होगा **"राष्ट्र को धारण करने वाला", "राष्ट्र का भरण-पोषण करने वाला"** अथवा **"राष्ट्र को स्थिर रखने वाला।"** यहाँ 'राष्ट्र' शब्द केवल एक भौगोलिक सीमा का द्योतक नहीं है, अपितु यह परिवार, समाज, संस्कृति और धर्म की सम्मिलित व्यवस्था को समाहित करता है। शतपथ ब्राह्मण के अनुसार- **'राष्ट्रभरणसाधारण्येन एतेषां राष्ट्रभृतां राजत्वमाह- राजानो वा इति'**।[1]

राष्ट्रभृत् होम का वर्णन वेदों और सूत्र ग्रंथों में विस्तार से मिलता है। **'राष्ट्रभृत् होम'** शुक्लयजुर्वेद माध्यन्दिनशाखा के अठारहवें (18) अध्याय में 38 से 43 तक के 6 मंत्रों में प्राप्त होता है। जो कि अग्निचयन याग (11-18 अध्याय तक) का भाग है।

कात्यायनश्रौतसूत्र में **'द्वादश गृहीतं विधार्ह जुहोत्युतापाविति प्रतिस्वाहाकार.....'** 'राष्ट्रभृत्' होम के विधिवत अनुष्ठान का उल्लेख है। जिसमें 'द्वादशगृहीत' (बारह बार) आहुतियो द्वारा 'राष्ट्रभृत्' मंत्रों के उपयोग का निर्देश देता है। यह होम राजसूय यज्ञ के एक भाग के रूप में 'राष्ट्रभृत्' इष्टियों (बलिदानों) को निर्धारित करता है, जिसका उद्देश्य राजा की शक्ति को सुदृढ़ करना और राष्ट्र को स्थिर बनाना है। यह सूत्र 'राष्ट्रभृत्' मंत्रों के विशिष्ट क्रम और आहुतियों के द्रव्यों (जैसे घी) का भी निर्देश देता है।

राष्ट्रभृत् होम का पारस्करगृह्यसूत्र में विवाह संस्कार के संदर्भ में यह दिखलाई पड़ता है, जहाँ 'राष्ट्रभृत्' की भावना नव दंपति (वर-वधू)के माध्यम से परिवार, समाज और राष्ट्र के कल्याण तक की कामना की गई है। पारस्करगृह्यसूत्र में कहा है- **'राष्ट्रभृत् इच्छञ्ज्ञयाभ्यातानांश्च जानन्'**[2] इस सूत्र को पारस्करगृह्यसूत्र के भाष्यकार हरिहर ने और स्पष्ट किया है कि **'विवाहे वैवाहिकहोमकर्मणि, राष्ट्रभृतः राष्ट्रभृत्संज्ञकाः आहुतीः आपवेदित्यध्याहारः'**[3] इस भाष्य में भाष्यकार **'आवपेत'** कहते हैं। इसका मतलब यह हैं कि- राष्ट्रभृत् संज्ञक आहुतियों को विवाह में **आवपेत** अर्थात सवधू-वर को राष्ट्र के धारण करने वाले तत्वों को इच्छा करनी चाहिए। इसी अर्थ को पारस्करगृह्य के सूत्र में **'इच्छन्'** पद से कहा गया है, उसका अर्थ है- **इच्छन्** अर्थात राष्ट्रभृत् होम का जो फल है, उस (फल) राष्ट्र को धारण करने का सामर्थ्य प्राप्त करना **'राष्ट्रं विभर्ती इति'**। राष्ट्र को धारण करने का तात्पर्य क्या है? इसका उत्तर उपरोक्त सूत्र द्वारा स्पष्ट होता हैं कि वैदिक दृष्टि में विवाह द्वारा सिर्फ दो व्यक्तियों का सम्मिलन नहीं, अपितु पारिवारिक, सामाजिक एवं राजनैतिक इकाई का विस्तार है। राष्ट्रभृत् होम के अन्तर्गत विवाह में वर-वधू पारस्करगृह्य द्वारा, अन्यत्र सपत्नीक यजमान या राजा का होना आवश्यक हैं क्योंकि यहाँ आहुतियाँ जोड़ों (मिथुन) में दी जाती हैं। ऐसा शतपथ ब्राह्मण के वचन से स्पष्ट होता है- **'मिथुनानि जुहोति मिथुनाद्वा अधि प्रजातिर्यो वै प्रजायते स राष्ट्रं भवत्यराष्ट्रं वै स भवति यो न प्रजायते तद्यन्मियुनानि राष्ट्रं विभ्रति मिथुना उ एते देवास्तस्मादेता राष्ट्रमृत आज्येन द्वादशगृहोतेन ..... द्वादशैवाहुतयो भवन्ति तस्योक्तो बन्युः'**[4]। अर्थात राष्ट्रभृत् होम के समय **'मिथुन'** (सपत्निक) होना चाहिए। अर्थात विवाह संस्कार में राष्ट्रभृत् होम के बाद जो वर है वह अकेला नहीं है,अर्थात अब वधू के साथ है और वधु के बाद उसका परिवार बढ़ेगा (माता-पिता के साथ वधु के पुत्र पौत्र भी होंगे) तो यह पारिवारिक सामर्थ्य को धारण करने की क्षमता आनी चाहिए। इस परिवार से जब ऊपर उठता है तो समाज के आवश्यकताओं को भी धारण करता है और समाज से भी जब ऊपर उठता है, तो राष्ट्र की आवश्यकताओं को राष्ट्र के भरण पोषण के सामर्थ्यता को वो चाहेगा जैसा कि शतपथ ब्राह्मण में कहा है-**"यो वै प्रजायते स राष्ट्रं भवति"**। इसीलिए पारस्करगृह्य के सूत्रकार ने **'इच्छन्'** तथा भाष्यकार ने **'आवपेत'** कहा हैं। इस क्रम विधि से ऋषियों का बहुत ही श्रेष्ठ और श्रेयस्कर उद्देश्य परिलक्षित होता है कि विवाह ही वह नीव है जो एक पारिवारिक-सामाजिक और फिर राष्ट्रीय दायित्वों को धारण करता है। इन सारे दायित्वों को धारण करने का बीजरूप यह विवाह संस्कार है। इसलिए विवाह में राष्ट्रभृत् संज्ञक आहुतियां देनी चाहिए। ताकि गृहस्थ अपनी सामर्थ्य और सेवा से परिवार, समाज एवं राष्ट्र के अभ्युदय में सकारात्मक योगदान दे सके। इस प्रकार के फल की इच्छा करता हुआ विवाह के प्रकरण में इन आहुतियों को देना चाहिए है। इसी प्रकार से अन्यत्र याग के स्थान पर समझना चाहिए।

विधान: राष्ट्रभृत् होम के अन्तर्गत घी की 12 आहुतियाँ देने की बात कात्यायन श्रौतसूत्र में कहा गया हैं। जो की शुक्लयजुर्वेद माध्यन्दिनशाखा के अठारहवें अध्याय के 6 मंत्रों में विहित है। यहां यह जिज्ञासा स्वाभाविक है कि 6 मंत्रों से 12 आहुति का विधान किस प्रकार होगा, तब भाष्यकार बताते हैं कि- **'प्रतिस्वाहाकारं राष्टर्भृत्संज्ञा आहुतीर्जुहोति । व्यतिषक्तेषु द्वादश-मन्त्रेषु पूर्वो मन्त्रः स्वाहावाडित्यन्तः, उत्तरस्ताभ्यः स्वाहेत्यन्तः। ततो मन्त्र यानि पुंलिङ्गानि स न इदं ब्रह्मेत्यादीनि, तानि व्यवहितपठितान्यपकृष्य पठित्वा पूर्वो मन्त्रः सम्पाद्यः। यानि च स्त्रीलिङ्गानि तस्यौषधयोऽप्सरस इत्यादीनि तान्युत्कृष्य पठित्वोत्तरो मन्त्रः सम्पाद्यः। तेन 'ऋताषाड्तधामाग्निर्गन्धर्वः स न इदं ब्रह्म क्षत्रं पातु तस्मै स्वाहा वाट् ताभ्यः स्वाहा' इति पूर्वो मन्त्रः। 'तस्यौषधयोऽप्सरसो मुदो नाम ताभ्यः स्वाहा' इत्युत्तरो मन्त्रः। पूर्वो गन्धर्वदेवत्यः, उत्तरोऽप्सरोदेवत्यः। एवमग्रे पञ्चस्वपि कण्डिकासु मन्त्रविभागो ज्ञेय इति सूत्रार्थः'**[5] अर्थात यहाँ कुल ६ मंत्रों का १२ जोड़ों (मन्त्रों) को गन्धर्व स्वरुप पुरुष शक्ति और अप्सराओं को उनकी सहयोगी स्त्री शक्ति के रूप में दर्शाया गया है। इन सभी ६ मंत्रों के १२ स्वरूपों को निम्न प्रकार से समझा जा सकता है।

यथा-राष्ट्रभृत् होम में गन्धर्व एवं अप्सराओं का प्रतीकात्मक स्वरूप

मन्त्र	६ गन्धर्व स्वरूप पुरुष शक्ति	६ अप्सरा स्वरूप स्त्री शक्ति
1. **ऋताषाड्...**	अग्नि	मुद नामक औषधियाँ
2. **संहितो विश्वसामा...**	सूर्य	आयुव नामक मरीचियाँ/किरणें
3. **सुषुम्ण.....**	चन्द्रमा	नक्षत्र नामक
4. **इषिरो विश्वव्यचा....**	वायु	जल/आपः नामक
5. **भुज्युः सुपर्णो....**	यज्ञ	स्तावा नामक दक्षिणा
6. **प्रजापतिर्विश्वकर्मा...**	मन	एष्टी नामक ऋक्-साम ऋचा

पहले मंत्र को देखें **'ऋताषाड् ऋतधामाग्निर्गन्धर्वः..... पातु तस्मै स्वाहा'** इसमे पहला भाग में (गन्धर्वादि) पुल्लिंग शब्दों का प्रयोग हुआ है और अंत में **'स्वाहा वाट्'** कहा जाता है। इस मंत्र में **'अग्निर्ह गन्धर्वः'**—यहां अग्नि को ही गन्धर्व कहा गया है। **'वाट्'** इस पद का संयोजन तब होगा जब श्रौतयाग किया जा रहा होगा, अन्यत्र होमादि में सिर्फ स्वाहा पद बोलना चाहिए।

दूसरा भाग : इसमें स्त्रीलिंग शब्दों (ओषधियों) का प्रयोग हुआ है और अंत में केवल **'स्वाहा'** कहा जाता है। **जैसे- 'तस्यौषधयोऽप्सरसो मुदो नाम ताभ्यः स्वाहा'**। **'ओषधयोऽप्सरसः'**— यहां औषधि वनस्पतियाँ ही अप्सराएँ हैं। इसी प्रकार से शेष 6 मंत्रो को जानना चाहिए। गन्धर्व-अप्सरा शब्द की व्याख्या शतपथब्राह्मण में कुछ इस प्रकार हैं- **'गन्धेन विशन्तीति गन्धर्वाः। अप्शब्देन रूपमभिधीयते, तेन विशिष्टाः सरन्तीत्यप्सरसः, ते च ताश्च गन्धर्वाप्सरसः'**।[6]

यहाँ एक बहुत ही रोचक दार्शनिक संबंध बताया गया है:

गन्ध: गन्धर्वों का संबंध 'गन्ध' (सुगंध) से है।

रूप: अप्सराओं का संबंध 'रूप' (सौंदर्य) से है।

अर्थात जब राजा का अभिषेक होता है, तो वह इन देवताओं से 'यश' और 'तेज' प्राप्त करता है। जैसे सुगंध और रूप किसी व्यक्ति की ओर दूसरों को आकर्षित करते हैं, वैसे ही इन देवताओं की कृपा से राजा का व्यक्तित्व प्रभावशाली बनता है ताकि प्रजा उसकी ओर खिंची चली आए।

यज्ञों और कर्मकांडों के विधि-विधान का विस्तृत वर्णन शुक्लयजुर्वेद संहिता में प्राप्त होता है। इसी वेद में 'राष्ट्रभृत्' होमादि के मंत्रों एवं इसके विस्तृत भाष्यों का विवरण भी है जिस पर उव्वट, महीधर, स्वामी करपात्री आदि आचार्यों ने पारंपरिक कर्मकांड-ज्ञानकांड केंद्रित मंत्र व्याख्याओं को स्पष्ट किया हैं, जिससें उनके महत्व को समझा जा सके।

राष्ट्रभृत् होम से संबंधित समग्र समझ विकसित के लिए प्रथम मंत्र के मंत्रार्थो को देखते है-

'ऋताषाड्तधामाग्निर्गन्धर्वस्तस्यौषधयोप्सरसोमुदोनाम।

सनऽइदम्ब्रह्मक्षत्रम्पातुतस्मैस्वाहा वाट्ताभ्यःस्वाहा।।[7]

सत्य को जीतने वाला, सत्य-स्वरूप अग्नि गन्धर्व हमारे इस 'ब्रह्म' (ज्ञान) और 'क्षत्र' (बल/शक्ति) की रक्षा करे। ओषधियां गंधर्व की अप्सराएं हैं. प्राणियों में हर्ष का संचार करने वाली ओषधियाँ उस अग्निरूपी गन्धर्व की अप्सरारूप हैं, वे हमारी रक्षा करें। उन्हें प्रीतिपूर्वक यह आहुति समर्पित है ॥ ३८ ॥

प्रजापतिर्विश्वकर्मामनोगन्धर्वस्तस्यऽऋक्सामान्यप्सरसऽएष्टयोनाम।

सनऽइदम्ब्रह्मक्षत्रम्पातुतस्मैस्वाहा वाट्ताभ्यःस्वाहा॥[8]

प्रजा के पालक, समस्त विश्व के कर्ता, मनरूप गन्धर्व हमारे क्षात्र और बाह्य बल की रक्षा करें। उनके निमित्त प्रीतिपूर्वक यह आहुति अर्पित है। अभीष्ट प्रदायक एष्टि नाम की ऋक् और सामवेद की ऋचाएँ मन की अप्सराओं के समान हैं, वे हमारी रक्षा करें। यह आहुति उनके निमित्त प्रीतिपूर्वक अर्पित है।

4.2. भाष्यकारों की तुलनात्मक दृष्टि:

उव्वट और महीधर: इन भाष्यकारों की दृष्टि मुख्य रूप से कर्मकांडीय और शब्दार्थ-केंद्रित है। वे 'राष्ट्रभृत्' का अर्थ उन देवताओं या क्रियाओं के रूप में करते हैं जो लौकिक रूप से राष्ट्र को धारण करती हैं या उसका पोषण करती हैं। उनके लिए, 'ब्रह्म' और 'क्षत्र' क्रमशः ब्राह्मण और क्षत्रिय जातियों को परिभाषित करते हैं, जिनकी सुरक्षा राष्ट्र की सामाजिक संरचना के लिए आवश्यक है।

स्वामी करपात्री जी:

भाष्यकार स्वामी करपात्री महाभाग अपने वेदार्थपारिजात भाष्यग्रन्थ में 'राष्ट्रभृत्' की अवधारणा को एक दार्शनिक और आध्यात्मिक आयाम देते हैं। वे 'राष्ट्र' को केवल भौतिक भूभाग या प्रजा न मानकर समग्र ब्रह्मांड के रूप में देखते हैं। यथा- **"ऋतं सत्यं परं ब्रह्म पुरुषं कृष्णपिङ्गलम्"**[9] इस तैत्तिरीय आरण्यक के आधार पर 'राष्ट्रभृत्' का अर्थ उस परमात्मा से है जो इस संपूर्ण ब्रह्मांड रूपी राष्ट्र का भरण-पोषण करता है। वे 'ब्रह्म' और 'क्षत्र' को भी केवल जातिगत न मानकर सार्वभौमिक आध्यात्मिक शक्तियों के रूप में व्याख्यायित करते हैं जिनकी रक्षा परमात्मा करते हैं।[10]

इस दृष्टिकोण में, 'राष्ट्रभृत्' होम केवल लौकिक राजा के लिए नहीं, बल्कि जीव द्वारा आत्मज्ञान प्राप्त करने और ब्रह्मांडीय व्यवस्था के साथ एकात्मता स्थापित करने की एक आध्यात्मिक साधना बन जाता है। उपरोक्त इन सूक्तों और उन पर किए गए भाष्यों (उव्वट महीधर और करपात्री जी,) के आलोक में 'राष्ट्रभृत्' (राष्ट्र को धारण करने वाली शक्तियों) की अवधारणा को निम्नलिखित मुख्य बिंदुओं में समझा जा सकता है:

. राष्ट्र का आधार: 'ब्रह्म' और 'क्षत्र' का समन्वय

सभी भाष्यकारों ने 'राष्ट्रभृत्' होम का मुख्य उद्देश्य **"ब्रह्म क्षत्रं पातु"** (ब्रह्म और क्षत्र की रक्षा) बताया है।

ब्रह्म क्या है: ज्ञान, आध्यात्मिकता, बुद्धिजीवी वर्ग और नैतिक मूल्य।

क्षत्र क्या है: सैन्य बल, शासन व्यवस्था, रक्षा शक्ति और नेतृत्व।

अर्थात राष्ट्र की अवधारणा मात्र भौगोलिक सीमाओं तक सीमित नहीं है, अपितु यह 'ब्रह्म' (वैचारिक एवं नैतिक बल) तथा 'क्षत्र' (क्रियात्मक एवं रक्षात्मक शक्ति) के संतुलित सामंजस्य का प्रतिफल है। यदि ज्ञान कमजोर होगा तो शक्ति निरंकुश हो जाएगी, और यदि शक्ति कमजोर होगी तो ज्ञान सुरक्षित नहीं रहेगा।

2. 'गन्धर्व' और 'अप्सरा' का प्रतीकात्मक अर्थ (मिथुन भाव)

मन्त्रों में गन्धर्वों को पुरुष शक्ति और अप्सराओं को स्त्री शक्ति (सहयोगी शक्ति) के रूप में दिखाया गया है।

अग्नि-औषधि: पहले मन्त्र में अग्नि (तेज/ऊर्जा) गन्धर्व है और औषधियाँ (संसाधन/पोषण) अप्सरा हैं। राष्ट्र तभी पुष्ट होता है जब उसमें 'तेज' (अग्नि) और 'संसाधन' (औषधि) दोनों हों।

मन-वेद (ऋक्-साम): अन्तिम मन्त्र में 'मन' गन्धर्व है और 'वेद' अप्सरा। इसका अर्थ है कि राष्ट्र के कर्णधारों का मन (प्रजापति/विश्वकर्मा) जब वेदों के ज्ञान (ऋक्-साम) से अनुप्राणित होता है, तभी राष्ट्र का निर्माण (विश्वकर्मा भाव) संभव है।

शक्ति का संतुलन: भाष्यों में स्पष्ट है कि पुरुष शक्ति (गन्धर्व) को 'स्वाहा' और 'वाट्' दोनों से आहुति दी जाती है, जबकि स्त्री शक्ति (अप्सरा) को केवल 'स्वाहा' से। यह प्रतीकात्मक रूप से राष्ट्र की 'प्राण शक्ति' को सुदृढ़ करने की प्रक्रिया है।

3. 'राष्ट्रभृत्' का दार्शनिक एवं आध्यात्मिक स्वरूप (करपात्री दृष्टि)[11]

स्वामी करपात्री जी के अनुसार, राष्ट्रभृत् केवल राजनीतिक शब्द नहीं है, बल्कि यह समष्टि-चेतना है:

परमात्मा ही राष्ट्रभर्ता: अंततः वह परमात्मा ही 'ऋताषाट्' (सत्य का धारक) और 'विश्वकर्मा' (सबका कर्ता) है।

मन की प्रधानता: राष्ट्र की अभ्युन्नति अथवा अवनति अंततः प्रजा एवं शासक वर्ग के सामूहिक 'संकल्प' और 'मानसिक शुद्धि' (प्रजापति भाव) द्वारा निर्धारित होती है। यदि मन 'प्रजापति' (प्रजा का पालक) और 'विश्वकर्मा' (रचनात्मक) है, तो राष्ट्र सुरक्षित है।

सत्य (ऋत) का अनुशासन: राष्ट्र का संचालन 'ऋत' (प्राकृतिक और नैतिक नियमों) के अधीन होना चाहिए। 'ऋताषाट्' का अर्थ ही है—सत्य के मार्ग पर चलकर असत्य (अधर्म) को पराजित करना।

4. भौतिक और प्राकृतिक संसाधनों की महत्ता (महीधर एवं उव्वट दृष्टि)[12]

औषधियाँ : राष्ट्र को 'मुद' (प्रसन्नता) औषधियों से मिलती है। यहाँ औषधि का अर्थ केवल दवा नहीं, बल्कि कृषि, वनस्पति और वे सभी प्राकृतिक संसाधन हैं जो जीवन को आनंदित करते हैं।

संवत्सर : १२ आहुतियों का संबंध १२ महीनों से है। इसका अर्थ है कि राष्ट्र की रक्षा का कार्य पूरे वर्ष (निरंतर) चलना चाहिए। यह एक सतत प्रक्रिया है, कोई एक दिन की घटना नहीं।

5. 'एष्टय' – सामूहिक आकांक्षा का बल

अन्तिम मन्त्र में वेदों को 'एष्टी' कहा गया है। अर्थात राष्ट्र केवल नियमों से नहीं, बल्कि नागरिकों की 'इच्छाशक्ति' से चलता है। जब नागरिक वेदों के माध्यम से "न: अस्तु" (हमारा कल्याण हो) की प्रार्थना और संकल्प करते हैं, तो वह सामूहिक संकल्प ही राष्ट्र को धारण करता है।

निष्कर्ष :

'राष्ट्रभृत्' की संकल्पना वैदिक परंपरा में राष्ट्र के पोषण, धारण और वृद्धि के गहन विचार को समाहित करती है। यह केवल एक पारम्परिक या कर्मकांडीय अवधारणा नहीं, बल्कि एक व्यापक सामाजिक, नैतिक और आध्यात्मिक दृष्टिकोण है। शतपथ ब्राह्मण और कात्यायन श्रौतसूत्रों में जहाँ यह राजा और राज्य की स्थिरता से संबंधित विशिष्ट यज्ञों को इंगित करता है, वहीं पारस्करगृह्यसूत्र के माध्यम से यह विवाह जैसे गृहस्थ संस्कारों में भी अपनी प्रतीकात्मक उपस्थिति दर्शाता है।

प्राचीन वेद भाष्यकार उव्वट, महिधर तथा आधुनिक भाष्यकार स्वामी करपात्री जी जैसे भाष्यकारों की व्याख्याएँ इस संकल्पना को एक नया आयाम देती हैं, जहाँ 'राष्ट्रभृत्' केवल एक देवता या कर्मकांडीय क्रिया न होकर स्वयं परमात्मा का ही स्वरूप बन जाता है जो संपूर्ण सृष्टि को धारण और पोषित करता है। विवाह संस्कार, जिसमें लाजाहोम और 'मिथुन' की अवधारणा केंद्रीय है, राष्ट्र के लिए प्रजा सम्पन्न करके, सामाजिक व्यवस्था को बनाए रखकर और नैतिकमूल्यों को हस्तांतरित करके 'राष्ट्रभृत्' की प्रक्रिया में सक्रिय योगदान देता है।

अतः, यह स्पष्ट है कि वैदिक परंपरा में व्यक्तिगत जीवन के प्रत्येक महत्त्वपूर्ण चरण को, विशेषकर गृहस्थ धर्म को, बृहत्तर सामाजिक, राष्ट्रीय और यहाँ तक कि ब्रह्मांडीय कल्याण के साथ गहराई से जोड़ा गया था। 'राष्ट्रभृत्' की संकल्पना इसी अविच्छिन्न संबंध का एक सशक्त प्रतीक है, जो हमें प्राचीन भारत की समग्र जीवन-दृष्टि से अवगत कराती है।

7. संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. अष्टाध्यायी - चन्द्रलेखा हिन्दीव्याख्यायुता, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, 1995
2. कात्यायनश्रौतसूत्रम्, कात्यायनीव्याख्यासरलावृत्तिभगवतीव्याख्या च सहित, सम्पादक: डॉ. देवेन्द्रप्रसादमिश्रः, चौखम्बासुरभारतीप्रकाशनम्, वाराणसी, 2015
3. कात्यायन श्रौतसूत्र, शुक्ल
4. निरुक्तम्,यास्काचार्यः,मेहरचन्दलक्ष्मणदासपब्लिकेशन्स,नवदेहली, 1999
5. पारस्करगृह्यसूत्र, हरिहर भाष्य
6. पारस्करगृह्यसूत्रम्- हरिहरगदाधरभाष्यद्वयोपेतम्, व्याख्याकारः- जगदीशचन्द्रमिश्रः, चौखम्भा सुरभारती
7. योग-वासिष्ठ, वाल्मीकि
8. यजुर्वेद, शुक्ल, अध्याय 18, मंत्र 38-43
9. वेदार्थ पारिजात, स्वामी करपात्री
10. शतपथ ब्राह्मण, सायणाचार्य कृत भाष्य
11. शतपथब्राह्मणम्-पं. श्रीचन्द्रधरशर्मा, अच्युतग्रन्थमाला कार्यालय
12. शुक्ल यजुर्वेद संहिता, माध्यन्दिन संहिता
13. शुक्लयजुर्वेदसंहिता, स्वामिकरपात्रभाष्यसहितम्, राधाकृष्ण-धानुकाप्रकाशनसंस्थानम्, कलकत्ताष्ट संवत् 2044
14. शुक्लयजुर्वेदसंहिता,पं. जगदीशचन्द्रशास्त्री, मोतीलाल-बनारसी-दास, देहली, 1987

पाद टिप्पणी:

[1] शतपथ ब्राह्मण 9.4.1.1

[2] पारस्करगृह्यसूत्र-1कांड / 5कंडिका

[3] पारस्करगृह्यसूत्र-1कांड / 5कंडिका

[4] शतपथ ब्राह्मण ९/४/१/५

[5] शुक्लयजुर्वेद माध्यन्दिनशाखा.18अध्याय/38मंत्र

[6] शतपथब्राह्मण 9/4/1/4

[7] शुक्लयजुर्वेद माध्यन्दिनशाखा 18अध्याय/38मंत्र

[8] शुक्लयजुर्वेद माध्यन्दिनशाखा 18अध्याय/43मंत्र

[9] तैत्तिरीय आरण्यक 10/12/01

[10] शुक्लयजुर्वेद वेदार्थपारिजातभाष्य 18अध्याय/38मंत्र

[11] शुक्लयजुर्वेद वेदार्थपारिजातभाष्य 18अध्याय/38मंत्र

[12] शुक्लयजुर्वेद माध्यन्दिनशाखा 18अध्याय/38मंत्र